International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070
Impact Factor: RJIF 5.22
www.socialsciencejournal.in
Volume 4; Issue 6; November 2018; Page No. 73-77

मृदुला गर्ग के कथा प्रसंगों में नारी चेतना के बदलते स्वरूप का अध्ययन

उजाला मिश्रा
शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि में जिस सामाजिक व सांस्कृतिक परम्परा को रिक्थ जनमानस में प्राप्य है, उसमें अविवाहिता नारी एक विचित्र और अनोखी स्थिति की द्योतक है। भारतीय सामाजिक जीवन में विवाह जैसे सामाजिक प्रश्नों को धार्मिक आचारों के साथ बड़ी दृढ़तापूर्वक बांधा गया है। यहां विवाह एक धार्मिक अनुबन्ध ही नहीं है अपितु स्त्री का जीवन क्रमशः पिता, पति और पुत्र के अधीन है। ऐसी सामाजिक विचारधारा में अविवाहिता नारी मानो भारतीय परम्परा के बिल्कुल विरुद्ध है।

वस्तुतः मृदुला गर्ग के कथा प्रसंगों में नारी और पुरुष के सम्बन्ध चित्रण में यह स्पष्ट किया गया है कि नारी सदियों से पीड़ा सहती आ रही है। व्यक्ति की अनेक मानसिक तथा शारीरिक आवश्यकताएँ ऐसी हैं जिनकी पूर्ति समाज में रह कर ही संभव हो सकती है। व्यक्ति का जीवन में जो लक्ष्य होता है, उसकी पूर्ति समाज में रह कर ही संभव है। वस्तुतः समाज से पृथक सर्वथा एकाकी जीवन की कल्पना भी व्यक्ति के लिए असह्य है। व्यक्ति ही समाज को बनाते हैं। अतः परिवार में व्यक्तित्व को बनाना परोक्ष रूप से समाज का ही निर्माण है। किसी समाज में नारी का क्या स्थान है, इससे उस समाज की स्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। जिस समाज में नारी जाति का शोषण होता है, उसका अर्थ है, समाज का आधा अंग शोषित और पीड़ित है। यदि नारी के अधिकारों का हनन हो, उसे आगे बढ़ने से रोका जाय तो ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण समाज की उन्नति संभव नहीं। प्राचीन काल से स्त्री की स्थिति समाज का विकास नापने का मापदण्ड रही है।

मृदुला जी के कुल छः उपन्यास हैं। उनमें भले ही विदेशी पुरुष के साथ भारतीय स्त्री प्रेम करती हों। फिर भी वह कभी भारतीयता को धुत्कारती नहीं। 'वंशज' उपन्यास सामाजिक है। जब शुक्ला जी के पात्र को देखा जाता है तो, वह भारतीय रस्मों को चाहता है, भारतीय संस्कार पर भरोसा करता है। फिर अंग्रेजों के विचारों को अपनाता है। इसलिए 'वंशज' दो पीढ़ियों के संघर्ष में दब चुका है। बाप अंग्रेज न्यायप्रिय है, बेटा भारतीय विचारवादी है। दोनों एक–दूसरे को खूब चाहते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास की मनीषा पति के रहते हुए भी मधुकर जैसे पर–पुरुष के साथ शादी कर लेती है। जब मधुकर के प्रेम में अधूरापन महसूस होने लगता है, तो तुरंत राकेश से शादी करती है। उसी प्रकार का उपन्यास 'मैं और मैं' है। माधवी अच्छी लेखिका है। माधवी और मनीषा के पात्रों में कुछ भी फर्क नहीं है। अगर दोनों उपन्यास को एक के बाद एक पाठक पढ़ता है तो, वह समझेगा कि– एक ही उपन्यास दो भागों में है। भले ही इन दोनों उपन्यास के बीच दो उपन्यास का अन्तराल रहा हो, फिर भी लेखिका का प्रथम उपन्यास की मनःस्थिति मात्र बिल्कुल वैसी की वैसी रही है। दोनों नायिकाओं की ख्वाईशें, पसंद अपनी–अपनी अलग है।

मूल शब्द : मृदुला गर्ग, कथा, प्रसंग, नारी चेतना।

प्रस्तावना

आधुनिक युग में रिश्ते–नाते सब व्यर्थ और स्वार्थ के बलबूते पर टिके हैं। पति–पत्नी में समझौतावादी व्यापारिक व्यवहार प्रचलित हो गया है। पतिपरमेश्वर और नारी को देवी मानने की बातें अब हास्यास्पद लगने लगी हैं। पत्नी की अपनी आधुनिक समस्याएँ हैं। जिन्हें वह परम्परागत आवरण से ढक कर नाराजगी जताती हैं, वहीं पति भी अनेक अबूझ अन्तर्विरोधों और दुःखड़ों से भरा जीवन जीने को अभिशप्त सा दिखाई देता है। स्पष्टतया स्त्री–पुरुष सम्बन्धों पर जितने भी उपन्यास हैं उनमें काम, कुण्ठा, अभिमान, अविश्वास और अपूर्णता जैसे तत्व किसी–न–किसी प्रकार से एकसमान तरीके से कथानक का आधार बनते हैं उसका ताना–बाना बुनते हैं।[2]

भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं धर्म में विवाह का अत्यधिक महत्व है। अति प्राचीन काल से ही विवाह एक अत्यन्त पवित्र एवं प्रतिष्ठित सामाजिक सम्बन्ध माना जाता रहा है। भारतीय संस्कृति स्त्री–पुरुष के विवाह–सम्बन्ध को चिरकालिक तथा अनेक जन्मों का सम्बन्ध मानती हैं। विवाह के बिना स्त्री एवं पुरुष का जीवन अधूरा एवं अपूर्ण माना जाता है। भारतीय संस्कृति में पुरुष बिना नारी के यज्ञ, देवपूजन, पितृ–तर्पण इत्यादि धार्मिक अनुष्ठान विधि–विधानपूर्वक सम्पन्न नहीं करवा सकता। यद्यपि प्राचीन समय में भी विवाहेतर सम्बन्ध और उसी के समकक्ष अन्य अव्याख्यायित सम्बन्धों का भी व्यवहार होता था, किन्तु वे प्रकाश्य न होने के कारण मर्यादित, नैतिक और शिष्ट आवरण से ढके थे, भले ही भीतर–भीतर उनमें कुलबुलाहट होती रही हो। तब वैवाहिक सम्बन्धों की ओट में विवाहेतर संबंध भी गाहे–बगाहे पलते रहते थे। पुरुष स्वीकृत–छद्म दोनों रूपों से स्त्री को छलता था।

आज भी बहुत कुछ वैसी ही हालत है। तीव्रता के साथ परिवर्तित हो रहे जीवन–मूल्य और विघटन को भी लेखिकाओं ने कथ्य के रूप में चुना है। नवचेतना के साथ–साथ परम्परागत मान्यताएँ एक–एक कर टूटती जा रही है। इन टूटी हुई मान्यताओं के खण्डहर पर खड़े होकर पुरानी पीढ़ी परम्परागत जर्जर मूल्यों से चिपके रहने का आग्रह करती है, जबकि नयी पीढ़ी इस आग्रह को ललकारती है। मूल्य विघटन और नव निर्माण की नयी स्थिति को लेखिकाओं ने व्यापक आयाम प्रदान किये है।

मानव सभ्यता के विकासगामी चरण में नारी बर्बरता के जितने भी मानक बनाये गये, वे सब विश्रृंखलित हो रहे हैं। आधुनिक परिवेश में नारी की जगह उन पर हो रहे अत्याचारों ने स्थान ले लिया है। सभ्यता के मानदण्ड तीव्रता के साथ बिखर रहे हैं। आज हमारा समाज परवर्ती पूँजीवादी अवस्था में पहुँच चुका है। स्त्रियों के लिए

यह अवस्था सर्वाधिक दुःखद प्रतीत हो रहा है। सभ्यता के जब भी मानदण्ड टूटते हैं नारियों को नयी विपत्तियों का मुकाबला करना पड़ता है यही वजह है कि सभ्यता को संरक्षित करने की जंग के साथ नारी–अस्मिता के संघर्षों को जोड़ना होगा। प्रो. जगदीश्वर चतुर्वेदी के शब्दों में– ''पूँजी के नग्नतम् और क्रूर हॉथों से जिन दो समूहों को सबसे ज्यादा तबाही का सामना करना पड़ रहा है उनमें पहले नम्बर पर स्त्रियाँ हैं और दूसरे नम्बर पर मजदूर वर्ग। परवर्तित पूँजीवाद इन दोनों समूह वर्गों की अब तक की समस्त उपलब्धियों को नष्ट करने पर आमादा है।''[3]

आर्थिक पराधीनता के कारण ही समाज में दोहरी नैतिकता का जन्म होता है। स्त्रियों के लिए एक कानून है, पुरुषों के लिए दूसरा/पुरुष विधुर हो जाए तो दूसरा विवाह कर सकता है, विधुर हुए बिना भी एक से अधिक पत्नियाँ रख सकता है। धनी हुआ तो आपने रखैलों और वैश्याओं की कभी उसके लिए नहीं होती हैं। किन्तु भारतीय नारी के विधवा हो जाने पर समाज चाहता है कि स्वर्गीय पति को याद करते हुए, वह शेष जीवन यों ही बिता दे।

इस दोहरी नैतिकता से क्षुब्ध होकर निराला ने लिखा था, 'सीता,' 'सावित्री,' 'दमयंती' आदि की पावन कथाएँ आँखें मूँदकर लिख सकता हूँ। तब बीवी के हाथ 'सीता' औरी 'सावित्री' आदि देकर बगल में 'चौरासी आसन' दबाने वाले दिल से नाराज न होंगे। उनकी इस भारतीय संस्कृति को बिगाड़ने की कोशिश करके ही बिगड़ा हूँ। अब जरूर सँभलूँगा।[4]

आजीवन कौमार्य चेतना

विवाहेत्तर स्त्री–पुरुष सम्बन्ध हमारे समाज में विशेष कर महानगरों में अतिसाधारण माने जाते हैं, क्योंकि इसे वे लोग आधुनिकता के अनुकूल मानते हैं। ऐसे सम्बन्ध पति–पत्नी के सम्बन्धों की अस्तित्वहीनता एवं खोखलेपन को दर्शाते हैं। विवाहेत्तर सम्बन्धों के पीछे जो मानसिकता है वह कई प्रभावों से बनती दिखायी पड़ती हैं। एक ओर अतृप्त कामवासना है, तो दूसरी ओर मनचाहे प्रेम की प्राप्ति का अभाव है। बड़े–बड़े शहरों में स्त्री–पुरुष नये अनुभव और थ्रिल के लिए विवाहेत्तर सम्बन्ध रखते हैं। वैसे उनमें परम्परागत आत्मसमर्पण की भावना नहीं के बराबर रहती है। अनेक उपन्यास लेखिकाओं ने आधुनिक परिवेश से उत्पन्न स्त्री–पुरुष की ऐसी विशेष मानसिकता को, उनकी नैतिक विमुखता को भली–भाँति अंकित किया है। मृदुला गर्ग, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, अलका सरावगी, निरूपमा सेवती, मेहरुन्निसा परवेज, उषा प्रियंवदा आदि के उपन्यास में वैवाहिक सम्बन्ध, वैवाहिक समस्याएँ एवं आधुनिक दाम्पत्य जीवन के खोखलेपन को उजागर किया है।

प्रजातन्त्र की दुनियाँ में यह एक अनोखा अनुभव है। उमा भारती, मायावती, इसी कोटि की महिलाएँ हैं। जो अविवाहित रहकर आजीवन कौमार्य जीवन व्यतीत करना चाहती हैं। न जाने कितने पुरुष वर्ग भी आजीवन कौमार्य का व्रत धारण किए हुए हैं। अटल बिहारी वाजपेयी, नाना जी देशमुख, के.सी. सुदर्शन, नरेन्द्र मोदी आदि इसी कोटि के पुरुष हैं जो आजीवन कौमार्य जीवन बिता रहे हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक नारी के अधिकारों और स्थिति में जो, ह्रासोन्मुख स्थिति भारत के सामाजिक इतिहास में उपलब्ध होती है उसने नारी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अपदस्थ कर उसे घर की नहीं अपितु रसोई और शयन कक्ष की चारदीवारी में आबद्ध कर कुंठित कर दिया था, उसमें जीवन, प्राणवत्ता का सर्वथा अभाव दिखता है। भारतीय नारी के पुनर्जागरण का इतिहास प्रस्तुत करते हुए हमने देखा कि नारी रसोई और शयनकक्ष के गवाक्ष खोल वहिर्जगत की ओर भी आकृष्ट हुई। कहना न होगा कि यह स्वस्थ चेतना बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही आकर ग्रहण करने लगी। समाज के बदलते मूल्य, नवजागरण, राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक आदान–प्रदान का नियम और कानूनी अधिकार, विवाह के प्रति बदलती आस्था आदि प्रश्नों में नवशिक्षिता भारतीय नारी को अपने मूल्य का, अपनी स्थिति का, अपनी प्रतिभा का पर्यवेक्षण करने को अभिप्रेरित किया। आधुनिक युग की यह अविवाहिता नारी इसी सांस्कृतिक और सामाजिक अराजकता की, हलचल की अभिनव देन है।

नारी के कन्या रूप और अविवाहिता नारी को विभाजित करने वाली कोई ऐसी स्थूल रेखा नहीं दिखती जो दोनों को एक–दूसरे से काट कर पूर्णतः वियुक्त कर सके। वह कौन सी ऐसी समस्या है जो दोनों को अपने–अपने क्षेत्र में विशिष्ट बनाती है, वह कौन–सा ऐसा आधार है जो दोनों को अलग–अलग परिधियों में बांटकर एक–दूसरे से असम्पृक्त करता है? इस प्रश्न के उत्तर में सबसे पहला और महत्वपूर्ण तथ्य जो औपन्यासिक जगत में उपलब्ध हुआ, उसके आधार पर, स्थूल रूप में कहा जा सकता है कि कन्या में जहां स्वावलम्बन की भावना अपेक्षाकृत न्यून है वहीं अविवाहिता नारी में जीविकोपार्जन करने की क्षमता दिखती है।

आजीवन कौमार्य की परिधि में जीवन यापन करने वाली नारी आर्थिक दृष्टि से पूर्णतः स्वतंत्र है। परन्तु अविवाहिता नारी की समस्या न तो कन्या की समस्याएं हैं और न जीविकोपार्जन करने वाली नारियों की समस्या है। अविवाहिता नारी के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कल्पना ऐसी परिस्थितियों में की जाय, जहां विवाह की सामाजिक अनुमति का अथवा सामाजिकता का सर्वथा अभाव हो, यह भी सम्भव है कि वह वस्तुनिष्ठ या आत्मनिष्ठ कारणों से स्वयं विवाह की उपेक्षा करे और अकेले जीवन बिताना अपेक्षाकृत श्रेयस्कर माने।

राष्ट्रीय परिवेश में सचेष्ट नारी

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सभी क्षेत्रों में एक नवोन्मेष होने लगा, सभी अपनी शक्ति को नयी दिशा, नये आयाम देने की दिशा में बढ़ने लगें यहाँ तक कि संस्कृति, धर्म और सामाजिक जीवन एवं साहित्य में भी सभ्यता की धारणा बलवती होने लगी एवं घर–परिवार और समाज की मान्यताओं के ढाँचे चरमराने लगी। स्वतंत्रता के बाद देश विभाजन ने नारियों को बड़े संकट में डाला वे असहाय स्थिति में विद्यार्थियों के घरों एवं कैम्पों में शरण लेने के लिये बाध्य हुई। वे शील भंग की भी शिकार हुई। एक ओर तो उनका बलात अपहरण हो रहा था तो दूसरी ओर उनके पति उन्हें स्वीकार भी नहीं कर रहे थे और उनके चरित्र एवं नैतिकता पर सन्देह भी कर रहे थे।

भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने इस स्थिति का समर्थन करते हुए कहा– ''महिला मुक्ति भारत के लिए शौक की वस्तु नहीं हैं, एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है ताकि राष्ट्र भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक संतोषजनक जीवन की ओर अग्रसर हो सके। नारी के व्यक्तित्व का विकास परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास की नींव है।

नारी–अस्मिता के प्रसंग में श्रीमती गाँधी जी कहती हैं– ''हम महिलायें सभी के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहती हैं, लेकिन अगर पुरुषों को साथ चलने में संकोच हो तो क्या महिलाओं को अपनी ओर से पहल नहीं करनी चाहिये।''[5]

आधुनिक नारी संवेदना के संदर्भ में सुधा सिंह का कथन है कि – ''स्त्री की अस्मिता को केन्द्र में लाने का श्रेय महिला आन्दोलन और दृश्य माध्यमों को जाता है। महिला आन्दोलनों के संघर्षों और

कुर्बानियों का नतीजा है कि स्त्रियाँ आज वर्ग के साथ अपने हक की लड़ाई लड़ रही हैं।''[6]

मृदुला गर्ग के साहित्य में नारी चेतना के परिवर्तित स्वरूप के अन्तर्गत नारी अस्मिता का संघर्ष एक जीता–जागता सबूत है। मृदुला के कथा प्रसंगों को लक्ष्य कर यह स्पष्ट किया गया है कि नारी की मुक्ति के लिए पढ़ाई और लड़ाई का वैचारिक जंग एक साथ चलना आवश्यक है, इस जंग में कैद स्त्री तभी मुक्ति पा सकती है। स्त्री को कैद से मुक्ति दिलाने के लिए सिर्फ सहानुभूति से काम नहीं चलने वाला है। जगदीश्वर चतुर्वेदी के अनुसार भारतीय समाज में आज भी अधिकांश स्त्रियाँ पराधीनता में जा रही है। कहने को उन्हें संवैधानिक तौर पर अनेक अधिकार मिल चुके हैं। किन्तु स्त्री की वास्तविक दुनियाँ अभी भी कैद और बंदिशों से घिरी है। स्त्री–अस्मिता को जानने की पहली शर्त है कि उन स्थितियों को जाने जिनमें स्त्री कैद है। स्त्री को कैद से मुक्ति दिलाने के लिए सिर्फ सहानुभूति से काम चलने वाला नहीं है। इसके लिए व्यावहारिक एवं अकादमिक दोनों ही स्तरों पर जंग लड़ी जानी चाहिए। जो लोग सोचते हैं कि सिर्फ आन्दोलन करके जंग जीती जा सकती हैं, वे गलत सोचते हैं। स्त्री की मुक्ति के लिए पढ़ाई और लड़ाई का एक साथ चलना बेहद जरूरी है। स्त्री की जंग जब तक वैचारिक स्तर पर नहीं जीती जाती तब तक स्त्री मुक्ति का सपना साकार नहीं होगा।''[7]

मृदुला गर्ग के साहित्य में मानवीय संघर्ष, बदलते आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों के कारण अत्यन्त प्रखर है। इसलिए संवेदना भी अत्यन्त तीखी है। मूल्यों के विघटन और नवीन सामाजिक, मनोवैज्ञानिक सत्यों और मानवीय नियतियों से यह संवेदना उभरती है। उनकी सर्वाधिक कहानियाँ टूटते मानवीय सम्बन्धों विशेषकर पति–पत्नी सम्बन्ध, पीढ़ियों के संघर्ष, स्त्री की बदलती स्थितियों आदि पर लिखी गई हैं। कहीं–कहीं पर परम्परागत नैतिक मूल्यों पर प्रहार किया गया है। भावनाओं की रंगीनियों का टूटन और प्रेम की बदलती परिकल्पना लेखिका की कहानियों का प्रमुख विषय है। समकालीन जीवन में व्याप्त मृत्यु, भय, संत्रास, रिक्तता, बोध, अजनबीपन और घुटन आदि के अंकन से उनकी कहानियों का दर्शन बहुत ही बारीक बन गया है।

मृदुला गर्ग जी के बहुतेरे स्त्री पात्र खुद मुक्त रोमान्स करना चाहती है। चिलबिलाती पंछियों के समान मुक्त काम उत्पीड़न को पसंद करती है। इसी कामवासना को खुलकर दर्शाने के कारण मृदुला गर्ग जी को पाठक व विमर्शकों ने आरोप लगायें होंगे। खासकर लेखिका की नायिकाएँ महानगरीय सभ्यता की होने से यांत्रिक जीवनयापन करती हुई नजर आती हैं। पुरुष प्रधान समाज में ये कहानियाँ स्त्री की अस्मिता और संघर्षों को संवेदना के धरातल पर उद्घाटित करती है।

मृदुला जी का लक्ष्य यहाँ सिर्फ आजादी, आन्दोलन और गाँधी, नेहरू, भगतसिंह जैसे नेताओं के विचारधारा पर था। जब उनका अंतिम उपन्यास 'कठगुलाब' प्रकाशित हुआ तो, फिर दोबारा स्त्री की घुटन, प्रेम से वंचित और देहवासना को लेकर लिखने लगी है। 'कठगुलाब' में कुल पाँच पात्र हैं। उनके चरित्रों पर अलग–अलग भाग किया गया है। ये पाँचों पात्र कहीं एक दूसरों से सम्बन्धित हैं। जब तक सारे उपन्यास को हम पढ़ नहीं सकते, तब तक उपन्यास की कथ्य पर अन्दाज नहीं लगा सकते। अलग–अलग कटे हुए फूलों की पंखुड़ियों को लेखिका ने मिलाकर उपन्यास का आकार दिया है।

आत्म निर्भर नारी

मृदुला गर्ग ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में यह स्वीकार किया है कि – ''भारतीय समाज में जहाँ नारी समाज शिक्षित होता है, वहीं उनमें अधिक आत्मनिर्भरता का आगमन होता है। बदलते परिवेश में भारतीय नारी शिक्षा के कारण आत्मनिर्भर बन चुकी है।

गाँधी जी नारी शिक्षा को अधिक महत्व देते थे। परिवारों के टूटने को गांधी जी एक ट्रैजिडी मानते थे, वे कहते थे कि नारी पुरुष सहयोग से ही परिवार चलते हैं। वे नारी के लिए संपत्ति अधिकार का प्रश्न उठाते हुए कहते थे कि सबको समान अधिकार मिले। वे कन्याओं की भ्रूण हत्या को अमानुषिक प्रथा मानते थे। वे कहते थे कि अपने ऊपर आरोपित सभी अनुचित बंधनों को तोड़ कर भारतीय नारी अपने कर्तव्यों को पूरा करें जैसे घर को संभालना, बच्चों को जन्म देकर उनमें सद्विचार उत्पन्न करना, सामाजिक हितों को बढ़ावा देना आदि।

इस प्रकार जहाँ एक ओर नारी विषयक आत्मनिर्भरता के द्वार खुले हुए हैं, वहीं नारी समाज बलात्कार, घरेलू हिंसा और आर्थिक आधार पर भेद–भाव से ग्रस्त हैं। विश्व की जनसंख्या के आंकड़े देखें तो पता लगता है कि 21वीं सदी में भी 75 प्रतिशत से ज्यादा स्त्रियाँ अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए पूरी तरह पुरुषों पर निर्भर हैं। इसमें दो राय नहीं कि स्त्रियाँ पुरुषों के लिए बच्चों को जन्म देने, उनके पालन–पोषण व शिक्षा–दीक्षा के दायित्वों का निर्वाह करने में पुरुषों की पूर्ण सहयोगिनी हैं। उनके कारण ही पुरुष घर–परिवार की ओर से इतने निश्चिंत रह पाते हैं कि वे आर्थिक लाभ कमाने के उद्देश्य से दुनियां के किसी भी कोने तक चले जाते हैं।

मृदुला गर्ग ने 'संगति–विसंगति' कथा संग्रह के अन्तर्गत निर्मला और दिनेश दोनों दाम्पत्य जीवन में आत्मनिर्भर हैं। दोनों कामकाजी और आत्मनिर्भर परिवार के प्राणी हैं। निर्मला कहती हैं – ''नहीं, उसकी कोई जरूरत नहीं है,'' उसने मधुर, पर दृढ़ स्वर में कहा, ''डबलरोटी–मक्खन साथ लायी हूँ। दिन में वही खाऊँगी और सामान खोलूंगी। आपके यहाँ खा लिया, तो लंबी तान कर सो रहूँगी और यह सब ऐसे ही पड़ा रहेगा।

वर्तमान युग में स्त्रियाँ तेजी से आर्थिक आत्मनिर्भरता हासिल कर रही हैं। पाश्चात्य देशों में स्त्रियों ने आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए बाकायदा आन्दोलन किए हैं और जीती हैं। यही कारण है कि इन देशों में स्त्रियों ने अर्थ की चाबी पुरुषों के हाथों से छीन ली हैं और वे अपनी गृहस्थी के सारे दायित्वों का निर्वाह करने में भी सक्षम हो चुकी हैं।

परिवारेत्तर जगत और नारी

मृदुला गर्ग स्वातंत्र्योत्तर युग की कथाकार है। इनके कथा साहित्य में परम्परागत, रूढ़िगत समाज का चित्रण जितना होना चाहिए, न होकर संयुक्त परिवार के स्थान पर एकल परिवार का चित्रण अधिक हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर युगीन नारियाँ शिक्षित और जागरूक हैं। जीवन उत्थान के लिए जीवनोत्थान के साथ विकास के बढ़ते चरणों में नौकरी, व्यवसाय, कृषि जैसे पेशे में भी आने लगी हैं। स्त्री–पुरुष के बीच की परम्परागत दूरी धीरे–धीरे उनकी दृष्टि में समाप्त प्राय होती जा रही है। नारी के जीवन में पति प्रधानता मात्र औपचारिकता बनकर रह गयी है। क्लब, सिनेमा, पिकनिक सभी में सहभागिता की हकदार बन गयी हैं। कामकाजी महिलाएँ, अशिक्षित महिलाएँ, कामगार नारियाँ, अब स्वतंत्र रूप में परायों के साथ काम करती हैं, बात करती हैं, हँसती हैं। नारी जागरण एवं नारी शिक्षा में नारी को जागरूक बनाया है। यही कारण है कि आज की नारी परिवारेत्तर जगत में प्रवेश कर चुकी हैं। विभिन्न व्यवसायों में पदार्पण करके नारी में आत्म निर्भरता प्राप्त कर ली हैं।

भविष्य का परिवार एकल परिवार की परिधि से आगे बढ़ रहा है।

शिक्षित युवतियों पर दहेज का बोझ उन्हें अलग जीवन जीने के लिए विवश कर रहा है। बात–बात पर औरतों को मारना, उत्पीड़ित करना, तंग करना पुरुष समाज का एक ऐसा प्रहार हैं जहाँ परिवार में उन्हें जीने नहीं दिया जा रहा है। ऐसी महिलाएँ परिवार जगत में जीने की ललक रखती हैं। शर्मा की दृष्टि में–''विवाह भी एक व्यापार है। एक माल हमने खरीदा, उसमें मुनाफा नहीं हुआ, चलो इसे खत्म करों, दूसरा माल लाओं उसमें मुनाफा कमायेंगे। यह व्यापारी जो उद्योगपति नहीं हैं, जो अनुत्पादक पूँजीपति हैं, यह बिलकुल सामन्ती ढंग से बल्कि और भी बर्बर ढंग से ऐसा व्यापार करता है। व्यापार में पूँजी लगाने के लिए वह दहेज मांगता है और उसे दहेज नहीं मिलता है तो वह स्त्री को जला देता है। इसमें घर के अन्य लोग भी सहयोग कर सकते हैं। सास सहयोग कर सकती है, ससुर सहयोग कर सकता है, लेकिन मेरा अनुमान यही है कि स्त्रियों को ये पति लोग– ये व्यापारियों के लड़के–जलाते हैं और जान बूझकर जलाते हैं कि दूसरा व्याह हो तो उसमें मुनाफा मिले।[8]
परिवारेत्तर जगत और नारी प्रसंग में मृदुला जी ने लिखा है – ''हो सकता है, यही मेरी कुंठा का कारण हो, मनीषा ने सोचा, इसीलिए मैं अपने से, मधुकर से, जीवन से उदासीन हो उठी हूँ, इसीलिए मेरा प्रेम शिथिल हो गया हो। यदि वह कहानी लिख रही होती तो इतना ठोस कारण पा खुश हो जाती और फौरन उसे अपने पात्र को थमा देती। पर अपने को बहकाना उतना आसान नहीं था। जितेन के साथ बिताये पिछले दो दिनों ने उसकी दृष्टि इतने प्रखर रूप से अंतर्मुखी बना दी थी कि थोपे हुए कारणों से संतुष्ट होने वाली मुग्धावस्था में वह नहीं थी। कल और आज वह इतनी ईमानदारी से जी चुकी थी। उन तमाम गांठों को तोड़ बाहर निकल आयी थी जो जाने–अनजाने, संस्कार, अध्ययन और दूसरों के निकाले निष्कर्षों से बाध्य होकर, वह अपनी बौद्धिकता और विचारशक्ति की ढीली डोरी में लगा कर अपने को बांधती आयी थी। जिस विश्लेषण का क्रम जितेन से नैनीताल में भेंट होने पर शुरू हुआ था, आज उसके चले जाने पर पूरा हो गया। वह समझ गयी, अपने जीवन की सार्थकता उसे अपने भीतर खोजनी होगी।[9]
पारिवारेत्तर जगत और नारी कथा प्रसंगों के अन्तर्गत मनीषा पति की अनुपस्थिति में पर पुरुष के प्रति आसक्त होती है। वह मधुकर से प्रेम करती हुई कहती है – ''केवल माँ बनने से कुछ नहीं होता। समय को भरने का एक और साधन मिल जाता, बस। क्या वह अपने जीवन को इसी तरह टुकड़े–टुकड़े कर भरती रहना चाहती है ? पहले जितेन ने पत्नी की मांग की। वह उसे पूरा करने में जुट गयी पर उसका अपना समय खाली रह गया। उसका मस्तिष्क खुराक की मांग करता, उसी खोज में इधर–उधर भटकने लगा। पर अधिक परिश्रम नहीं किया। जो रास्ता सबसे पहले दिखायी दिया उसे थाम लिया, कॉलेज में नौकरी कर ली। रास्ता सुगम था पर अनुकूल नहीं। वह पढ़ाती जरूर रही, पर हरदम यही अहसास लिये कि वह सिर्फ खाली समय को भरने के लिए पढ़ा रही हैं।
पुरुष का अहं कई बार कुंठा बन कर उभरता है और वह नारी के साथ जोर जबरजस्ती करने से भी बाज नहीं आता। बीसवीं शताब्दी की भारतीय स्त्री पश्चिमी स्त्री से प्रभावित हुई है, पर यह प्रभाव मुख्य रूप से महानगर–केन्द्रित है या अति उच्च, सुसम्पन्न एवं सुशिक्षित परिवारों में ही परिलक्षित होता है। पर्वतीय और आदिवासी महिलाओं की स्थिति तो त्रिशंकु के समान है। वे पश्चिम का अनुकरण करना चाहती है, पर कर नहीं पाती और विशुद्ध भारतीय नारी बन कर जीना अब उनके लिए संभव नहीं।

आधुनिक परिवेश और नारी

आर्थिक दृष्टि से आज की स्त्री को जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई है उसके विस्तार की असंख्य संभावनाएँ हैं। जैसे–जैसे उसके कर्मक्षेत्र की लक्ष्मणरेखा मिटती जाती है वैसे–वैसे वह नवीन कर्तव्य सँभालने की क्षमता प्राप्त करती जाती है। पर समाज की स्थिति के कारण, यह आर्थिक स्वावलंबन भारतीय स्त्री को पारिवारिक सहानुभूति से वंचित कर अकेला बनाता जाता है। पुरुष अकेला हो सकता है, परन्तु स्त्री अनेक सम्बन्धों की केन्द्र होने के कारण एक संस्था के समान है। उसके लिए अकेलापन एक प्रकार का निर्वासन दण्ड बन जाता है और उससे तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। उल्लास के साथ शक्ति जितनी गरिमापूर्ण हो जाती है, क्लांति या थकावट के साथ उतनी ही दयनीय।
इस सम्बन्ध में पश्चिम की नारी का जीवन भी द्रष्टव्य है। उसके पास शिक्षा है, स्वतंत्र जीवन है, विस्तृत कर्मक्षेत्र है, किन्तु गृह की इकाई टूट गई है और इस टूटने की रिक्तता ने उसके मनोबल को भी तोड़ दिया है। आज वह जिस आत्मघाती उन्माद में क्रियाशील है, वह मानसिक निष्क्रियता का परिणाम है। भौतिक सुविधाएँ सुलभ करने वाले कर्मक्षेत्र ने उसके जीवन को अपने भार से ही चूर–चूर कर डाला है।
नवीन युग की भारतीय नारी भी इस भार का अनुभव कर रही है, जो बाहर से हर क्षण को भरकर भीतर की हर साँस को खाली कर देता है। स्वतंत्रता सब के लिए जीने की शक्ति न दे सके तो मनुष्य के लिए प्रसाधनमात्र रह जाएगी और सबके लिए जीने की विद्युत सहानुभूति के जल में उत्पन्न होती है। आधुनिक युग, परतंत्रों और पीड़ितों के उत्थान का युग रहा है और उनके उत्थान से मानव–समाज के सभी क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए।
स्पष्ट है कि मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास और कहानी में आधुनिक नारी के सामाजिक संघर्ष को मनोमय और मनोरम परिवेश में प्रस्तुत किया है। हिन्दी उपन्यासों में स्त्री जीवन का जो चित्रण किया जाता रहा है बहुधा उसमें उसकी उपेक्षित दशाओं को ही चित्रित किया गया है।
मृदुला गर्ग ने अपने कथा साहित्य में यह स्पष्ट किया है कि आज के परिवेश में नारी भी सामाजिक चेतना से पूर्ण हो रही है। अपनी सामाजिक भूमिका में पुरुषों से बराबरी का अधिकार माँग रही है और इस दिशा में वह संघर्षशील भी है। सामाजिक कुरीतियों का सबसे ज्यादा शिकार नारी वर्ग हो रहा है। उसमें समाजवादी चेतना आयी है, परन्तु सदियों से चली आ रही निरक्षरता के कारण वह इस दिशा में ही प्रयत्नशील हो पाती हैं। कहानियों में सामाजिक मूल्यों की सही लड़ाई का समर्थन किया गया है। ये कहानियाँ नारी के लिए समाज द्वारा निर्मित नैतिक मूल्य–व्यवस्था के छद्म को गहराई से महसूस कराती हैं। अधिकांश कहानियाँ नारी के पक्ष में ये दर्शाती हैं कि सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण में 'नैतिक–अनैतिक' के प्रश्न नारी को बार–बार अग्नि–परीक्षा के लिए खड़ा करते रहे हैं। ये कहानियाँ रूढ़ परम्पराओं, तत्वों और यथास्थिति वादियों को बेनकाब करती हैं।
सामाजिक परिवर्तन लाने हेतु बेचैन पात्रों के कथाकार अपनी पूरी सहानुभूति देते हैं। संस्कृति और समाज द्वारा निर्धारित लैंगिक भूमिकाओं के कारण कुंठित संभावनाओं वाली अनेक जिन्दगियों की तरफ से आवाज उठाते हुए कथाकार नारी की सीमित भूमिका संकट और अस्तित्व संकट को सामने लाते हैं और विचारधारा के नाम पर उछाली जाने वाली निरर्थकताओं को उजागर करते हैं। अब शिक्षा, सामाजिक जागरण और परिवार कल्याण को राष्ट्रीय प्राथमिकता मिल जाने के कारण–लिंग, कार्यक्षेत्र और प्रकृति सम्बन्धी सभी निषेधों को चुनौती मिली है। जीवन की सभी जटिलताओं और विषमताओं पर वाद–विवाद प्रारम्भ हुआ है और स्वयं महिलाओं द्वारा की जाने वाली आत्मपरिभाषा में निहित आत्म

प्रवंचना को समाप्त करने की प्रक्रिया साहित्य में आरम्भ हुई है।
समाज में प्रचलित विभिन्न रूढ़ियों को महिलाएँ अपने सामाजिक सन्दर्भों में, पारिवारिक पृष्ठभूमि में अपनी क्षमता के अनुसार तोड़ती हैं, वे उनसे मुक्ति पाना चाहती हैं, उन पर तरह–तरह से प्रत्यक्ष रूप से प्रहार करती हैं। अज्ञेय अपने निबंध 'हमारे समाज में नारी' में कहते हैं कि ''स्त्री को हमेशा रिश्ते के, किसी पुरुष के माध्यम से देखना समाज को पुरुष संचालित मानने का एक विस्तार है। स्त्री अपने आप में कुछ नहीं, उसका अपना व्यक्तित्व कुछ नहीं है, उसके लिए केवल कर्मों और कर्तव्यों का एक समूह है, एक रोल जो इस दृष्टि से निर्धारित होता है और क्योंकि यह पुरुष समाज बड़ी आसानी से नारी के व्यक्तित्व की सत्ता को ही नकार जाता है। इसलिए आज उस कथित पूजा भाव का भी कोई अर्थ नहीं रहता। ..... सच्चे अर्थों में पूज्य वह स्त्री हो सकती है जिसके व्यक्तित्व को समाज ने एक स्वंतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए समाज के लिए अपने को सामने करने की और अपने मूल्यों को चुनौती देने की बात उठती है।''[10]
संस्कृति और समाज द्वारा निर्धारित, संकुचित लैंगिक भूमिकाओं के कारण कुंठित संभावनाओं वाली अनेक जिंदगियों की तरफ से आवाज उठाती हुई लेखिकाएँ, विचारधारा के नाम पर की जाने वाली निरर्थकताओं को उजागर करती हैं। सदा से सामाजिक कुरीतियों का सबसे ज्यादा शिकार नारी वर्ग होता आया है।
आज भी महिलाएँ इस पुरुष प्रधान समाज में अन्याय और शोषणपरक व्यवस्थाओं का शिकार बनी हुई हैं। कथाकार मानवता को धर्मजाति, उपजाति आदि में बाँटकर एक को श्रेष्ठ और दूसरे को म्लेच्छ साबित करने की प्रवृत्ति का खण्डन करते हैं। कई सामाजिक कुरीतियों की ओर वे ध्यान आकृष्ट करते हैं जो मात्र नारी को ही भोगनी पड़ती है। कथाकार यह मानते हैं कि समाज में महिलाओं के प्रति नए दृष्टिकोण की आवश्यकता है।
इस प्रकार नारीवादी कथाकारों ने 'धर्म एवं आस्था' तथा 'परम्परा एवं मूल्यों' में समय के साथ परिवर्तन होना आवश्यक माना है। किसी भी सम्बन्ध को वे तब तक ही निभाना चाहती है जब तक वे उसके व्यक्तित्व के निर्माण में बाधा न प्रस्तुत करें। समाज की जड़ व्यवस्था में वे परिवर्तन की आकांक्षी हैं। सामाजिक कुरीतियों का वे पुरजोर विरोध करती हैं। शोषण के प्रति आज नारी विरोध की मुद्रा में है जो उसकी चेतना के विविध आयामों के सक्रिय होने से सम्भव हो सका है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः मैं यह कह सकती हूँ कि हिन्दी उपन्यास में अविवाहिता नारी की समस्या प्रमुखतः विवाहित प्रेमी और असफल प्रेम की पृष्ठभूमि में ही प्रस्तुत की गई है और समस्या का प्रतिफलन आदर्श अथवा विवशता की भावना से किया गया है। हिन्दी जिस क्षेत्र में बोली जाती है उसमें अविवाहिता नारी पात्र बिरले कहीं मिलते हैं। वह प्रायः अजनबी या असाधारण, कभी–कभी इक्की और सनकी समझी जाती है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। उस क्षेत्र के प्रतिनिधि कला–रूप उपन्यास में उस नारी का समग्र व्यक्तित्व मूर्त न हो सका या उसकी सम्भावनाओं का भरपूर आभास न आ सका तो इससे यही प्रकट होता है कि उपन्यासकारों ने यथार्थ के प्रति आग्रह नहीं छोड़ा। अविवाहिता नारी के चरित्र के औपन्यासिक प्रतिफलन की सीमा अन्ततः अनुभूति यथार्थ की सीमा प्रतीत होती है।
कुल मिलाकर मृदुला गर्ग के साहित्य के बारे में कहना हो तो उनकी चरित्र–सृष्टि अपूर्व है। उनके पात्र अपनी जीवंतता के कारण अपना मार्ग स्वयं बनाते हैं, उनमें रक्त की लालिमा है, जीवन की सक्रियता है, प्रेम की तीव्रता है, यौवन की कामवासना है। इसलिए वे जिन्दगी की लड़ाई में आगे बढ़कर प्रतिकूलताओं को पूरे वेग से पीछे ढकेल देने में सक्षम है। मृदुला जी कभी भी अपना परिचय खुद नहीं देतीं। उनके पात्रों की जीवंतता के कारण, वे खुद अपना परिचय दे देते हैं। वास्तव में मृदुला गर्ग जी का कोई भी पात्र काल्पनिक या नकली नहीं है। उनका प्रत्येक पात्र आपको अपने ही परिवेश में बड़ी आसानी से मिल सकता है। असल में बात तो यह है कि उनके सभी पात्र अपनी–अपनी निजता को बचाये रखने में पूर्णतः समर्थ हैं। मृदुला जी उन बारीक रेखाओं को भी उभाड़ देती हैं जिनसे व्यक्ति–व्यक्ति का अंतर स्पष्ट हो जाता है।
इसी प्रकार मृदुला जी ने चित्तकोबरा, उसके हिस्से की धूप, अनित्य, कठगुलाब, मैं और मैं उपन्यास तथा कितनी कैदें, टुकड़ा–टुकड़ा आदमी, डैफोडियल जल रहे हैं, सैम, संगति–विसंगति तथा मेरे देश की मिट्टी, अहा, कहानियों में नारी के आधुनिक स्वरूप को कड़ी चतुराई और न्यायिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने नारी–विमर्श के परिप्रेक्ष्य में उनके सुझाव भी दिए हैं जो सुझाव सभी के लिए गौरवपूर्ण कही जा सकती है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा के युगीन परिवेश को मृदुला गर्ग ने नए रूपों में नया आकार दिया है। नारी जीवन की विषमताओं को रेखांकित करती हुई लेखिका ने इस विषय के अंतर्गत नारी जागरण, नारी मुक्ति आन्दोलन, नारी सशक्तिकरण, महानगरीय नारी जीवन को प्रमुख रूप से उजागर किया है। आधुनिक नारी जीवन के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्वरूप को निडर होकर प्रस्तुत करने की क्षमता रखने वाली लेखिकाओं में मृदुला गर्ग का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। मृदुला गर्ग ने अपने हिन्दी कथा साहित्य में मौलिक एवं चिंतन प्रधान लेखन से हिन्दी कथा साहित्य को अधिक सार्थक और उद्देश्यपूर्ण बनाया है।

सन्दर्भ

1. समाजशास्त्र, कंचनलता सब्बरवाल, पृष्ठ 258.
2. हिन्दी उपन्यास संबंधों के विविध आयाम, पृष्ठ 70, श्रवण कुमार मीणा.
3. स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा, भूमिका उद्धृत अंश, पृष्ठ 7, जगदीश्वर चतुर्वेदी.
4. सुधा, 1 फरवरी 1934 – देवी – निराला.
5. दैनिक जागरण (वाराणसी), सम्पादक (31–10–08), इक्कीस अक्टूबर, सन् 2008.
6. स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा (भूमिका) के उत्कृष्ट अंश, पृष्ठ 7, जगदीश चतुर्वेदी, सुधा सिंह.
7. स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा, भूमिका से, प्रथम अंश, पृष्ठ 7, जगदीश्वर चतुर्वेदी.
8. स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा भारतीय परिवार और नारी (राम विलास शर्मा), पृष्ठ 103, सम्पादक जगदीश्वर चतुर्वेदी, एवं सुधा सिंह.
9. उसके हिस्से की धूप, पृष्ठ 118–119, मृदुला गर्ग.
10. युग सन्धियों पर, सच्चिदानंद हीरानन्द वात्सयायन अज्ञेय, पृष्ठ 77.